पंचम अध्याय

"विवेच्य उपन्यासों का
परिवेशगत अनुशीलन"

पंचम अध्याय

"विवेच्य उपन्यासों का परिवेशगत अनुशीलन"

विषय प्रवेश :

हिंदी दलित साहित्य के मुर्धन्य रचनाकार जयप्रकाश कर्दम का रचना संसार भोगे हुए यथार्थ की वेदना है, दर्द है और वह दर्द ही रचना सृजन की प्रेरणा बना है। इनके विवेच्य उपन्यास 'करुणा' तथा 'छप्पर' भारतीय समाज व्यवस्था में दलित समाज जीवन की यथार्थता एवं जीवंत परिवेश की अभिव्यक्ति का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। इस रचनाओं के कथ्य में निहित तथ्य को सत्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने परिवेश की यथार्थ पृष्ठभूमि को आधार बनाया है। अत: प्रस्तुत अध्याय में जयप्रकाश कर्दम जी के विवेच्य उपन्यासों में निहित परिवेश का विवेचन तथा विश्लेषण का अध्ययन यहाँ पर निम्नांकित रुप में प्रस्तुत है -

5.1 परिवेश तथा वातावरण से तात्पर्य :

उपन्यास रचना के शिल्प में देशकाल वातावरण महत्त्वपूर्ण तत्व है, जिसे परिवेश भी कहा जाता है। बृहत हिंदी शब्द कोश में परिवेश का अर्थ है - "घेरना, वेष्टन, परिधि, आवेष्टित करनेवाली वस्तु आदि।"[1] उपन्यास के कथ्य को सत्य तथा सजीव एवं स्वाभाविक बनाने के लिए परिवेश का चित्रण रचनाकार के लिए अनिवार्य तत्व है। सत्यपाल चुघ परिवेश की महत्ता के बारें में लिखते है कि - "वातावरण का सुंदर तथा मनोहारी चित्रण ही कथा का प्राण है।"[2] तथा प्रदीपकुमार शर्मा परिवेश के बारे में कहते है - "देशकाल वातावरण के अंतर्गत किसी भी समाज या राष्ट्र की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ, आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा व्यक्ति का आंतरिक संसार कुंठा, काम, भय, अहं, अचेतन, व्यापार आदि जटिल परिवेश को समाहित किया जाता है।"[3]

वातावरण का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए डॉ.त्रिभुवन सिंह लिखते है कि - "वातावरण का इतना अधिक महत्त्व होता है कि जिस प्रकार रात के अँधेरे में साँप की प्रतीति होती है, उसी प्रकार यथार्थ वातावरण के कारण एक कल्पित रूप में सत्य घटना की प्रतीति होती है।"[4]

डॉ.चंद्रकांत बांदिवडेकरजी के मतानुसार - "अब परिवेश उपन्यास तत्वों पर हावी होता जा रहा है। अब परिवेश केंद्र में आने लगा है।"[5] डॉ.क्षितिज धुमाळ के मतानुसार - "अंतिम दशक के उपन्यासों में परिवेश का साधारणीकरण होने के कारण अतिसामान्य व्यक्तियों का उपन्यासों में आगमन होने लगा है। अंतिम दशक का हिंदी उपन्यास सामान्य लोगों की तलाश में झुग्गी-बस्ती, खेत-खलिहान, पहाडी दुर्गम अंचलों तक पहुँच गया है।"[6] स्पष्ट है कि परिवेशानुकूल वातावरण का निर्माण आपातकालोत्तर उपन्यासों की एक विशेषता बन गयी है।

वातावरण के यथार्थ चित्रण से उपन्यास का कथ्य विश्वसनीय और सशक्त अभिव्यक्ति का द्योतक बनता है। अर्थात वातावरण तथा परिवेश उपन्यास का एक उल्लेखनीय तत्व द्रष्टव्य है जो उपन्यास के प्रभाव को बढ़ाता है।

5.2 विवेच्य उपन्यासों का परिवेशगत अनुशीलन :

जयप्रकाश कर्दम जी के विवेच्य उपन्यासों 'करुणा' तथा 'छप्पर' के परिवेशगत अनुशीलन में सामाजिक परिवेश, आर्थिक परिवेश, राजनीतिक परिवेश, तथा धार्मिक परिवेश आदि का समग्रता से विवेचन तथा विश्लेषण यहाँ पर इस प्रकार प्रस्तुत हैं -

5.2.1 सामाजिक परिवेश :

समाज की संकल्पना स्पष्ट करते हुए हिंदी कोशकार लिखते हैं कि - "समाज एक स्थान पर रहने वाला अथवा एक ही प्रकार के कार्य करने वाले लोगों का दल किसी विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित समूह है।"[7] तथा समाज शब्द की उत्पत्ति लॅटिन

भाषा के 'SOCIETIES' धातु से हुई है, जिसका अर्थ समाज, संगति, मंडल, संस्था है। डॉ.परूषोत्तम दुवे समाज की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए लिखते है कि - "एक-दूसरे के सहारे प्रगति पथ पर अग्रसर होनेवाले व्यक्तियों का समूह समाज है।"[8]

अत: साहित्य समाज का दर्पण है तथा मनुष्य सामाजिक प्राणी होने से वह समाज के साथ जुड़कर ही अपना विकास साध सकता है। रचनाकार अपने अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए पूरी निष्ठा के साथ प्रतिबद्ध रहता है। तथा वह उसकी रचना में अपने युग की सामाजिक स्थिति का प्रतिबिंब रेखांकित करता है।

जयप्रकाश कर्दम जी ने अपने विवेच्य उपन्यासों में दलित समाज के लोगों की सामाजिक स्थिति का मर्मस्पर्शी यथार्थ चित्रण का अंकन किया हुआ है।

'करुणा' उपन्यास का परिवेश तथा वातावरण यथार्थता का अच्छा नमूना पेश करता है। 'करुणा' लघु-उपन्यास का सृजन जयप्रकाश कर्दम जी ने भगवान गौतम बुद्ध के धम्म के तत्वज्ञान का समाज में प्रचार-प्रसार के साथ-साथ उसमें निहित मानवतावादी मूल्यों से समन्वित आदर्श समतावादी समाज निर्माण की संकल्पना को स्पष्ट करने के प्रयोजन से किया हुआ है।

इस लघु-उपन्यास के सामाजिक परिवेश का चित्रण इसप्रकार दृष्टिगोचर है-

"केवल मुट्ठी भर पूँजीपति और जमींदार लोग ही प्रगति के रास्ते पर दौड़ लगा रहें हैं। शेष समाज पंगु बना हुआ हैं।"[9] अर्थात दलित समाज रात-दिन कमरतोड़ मेहनत करने के पश्चात भी सदैव उपेक्षित तिरष्कृत हैं। दलित समाज के श्रमिकों की जिंदगी का यथार्थ परिवेश यहाँ चित्रित है।

"समाज का न तो न्याय के प्रति आग्रह हैं और न वह ईमानदार लोगों के लिए सुरक्षा कवच ही। अन्याय, अत्याचार, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, झूठ, वेईमानी चारों ओर यही सब फैला हुआ है। सत्य और ईमानदार के साथ कोई जी नहीं सकता जिसके पास पैसा और ताकत है वह कुछ भी कर सकता है और करा सकता है। गरीव और

शक्तिहीनों के लिए कहीं कोई जगह नहीं है।"[10] समाज के सवलों द्वारा दुर्वलों पर होनेवाले अन्याय और अत्याचार का परिवेश यहाँ वातावरण को जीवित बनाता है।

अत: उपन्यास की सवर्ण नायिका करुणा तथा सहाय्यक पात्र शिक्षित दलित युवक रमेश ये दोनों परंपरागत समाज के परिवेश में बदलाव लाने के लिए वौद्ध धम्म की दीक्षा लेकर समाज में स्थित विषमता, भ्रष्ट प्रशासन, अनैतिकता, अन्याय, अत्याचार को मिटाकर आदर्श समाज के सामाजिक परिवेश का निर्माण करने में प्रयासरत हैं। यहाँ परिवेशजन्य युगबदलाव का वातावरण लेखकने यथार्थता के साथ रेखांकित किया हैं।

'छप्पर' उपन्यास में चित्रित सामाजिक परिवेश के अंतर्गत इन वातों को स्पष्ट किया है कि प्राचीन काल से भारतीय समाज व्यवस्था में समाज का वृहद अंग दलित वर्ग अपने अज्ञान तथा पिछड़ेपन के कारण किस तरह यातनामयी तथा अभावग्रस्त एवं कई समस्याओं से ग्रस्त जीवन व्यतीत कर रहा है इसका यथार्थ चित्रण किया है -

"झोपड़पट्टी में रहनेवाले इन लोगों में न तो मध्यवर्ग की भाँति आपा-धापी है, न व्यवसायिक व्यवहार और न छल-कपट ही। रसिकता इनमें केवल गीत संगीत तक सीमित है। बल्कि यूँ कह सकते हैं कि जीवन की मुख्य धारा से अलग-थलग से पड़े इन लोगों के जीवन में न रस है न प्राण। बस किसी तरह जीवन की धारा से जुड़े रहते हैं ये लोग और जैसे बहती नदियाँ महासमुद्र में जा मिलती हैं वैसे ही इनकी जीवन यात्रा भी कहीं महाशून्य में जाकर पूरी हो जाती है। समाज में क्या हो रहा है, देश क्या करवट ले रहा है, इसकी न इन्हें कोई जानकारी होती है न इन सब में रुचि है। सुबह से शाम तक जी-तोड़ मेहनत से काम करना रात को रुखा-सूखा जो मिल जाए खा-पीकर पड़े रहना और अगली सुबह उठकर फिर रोजी-रोटी की जुगाड़ में उलझ जाना, इसी में इनके जीवन की सारी गति समा गयी है।"[11] दलित समाज की आर्थिक दुर्वलता, उनके वीच का अज्ञान, अंधविश्वास, उनके वीच अशिक्षा, सवर्ण समाज से उनका होनेवाला शोषण, उनकी स्त्रियों की लूटी जानेवाली अस्मत आदि का परिवेश

लेखक ने यहाँ रेखांकित किया है - "मधुर भाषण, परस्पर सहयोग, एक दुसरे के प्रति सहानुभूति और मान-सम्मान की भावना सब कुछ है इन लोगों में।"[12]

भारतीय समाज की चातुर्वण्य व्यवस्था के तहत दलित वर्ग गाँव में जमींदारों, साहुकारों, ठाकुरों, पंड़ित-पुरोहित इन उच्चवर्गीय समाज द्वारा शोषण का शिकार बना हुआ है। समाज में चारों ओर जातीय भेदभाव की जड़े फैली हुई है। दलित व्यक्ति का धर्म तथा ईश्वर के नामपर शोषण किया जा रहा है, दलित समाज को उत्थान तथा विकास के साधनों से दूर रखा जा रहा हैं। तथा दलित नारी भी शोषित है। इस प्रकार दलित समाज का उपेक्षाजन्य परिवेश प्रस्तुत उपन्यासों में चित्रित किया गया है।

दलित व्यक्ति कितना भी योग्य क्यो न हो समाज में उसकी कोई हैसियत नही हैं। जैसे उपन्यास का नायक चंदन अपने उच्च्य शिक्षित दलित मित्रों से कहता है कि - "माना की तुममें अपना व्यवसाय करने का इरादा है और तुम योग्य भी हो, लेकिन इस जाति के लेबल से कैसे पार पाओगे। जो तुम्हारे रास्ते का पत्थर बना हुआ है। इस पत्थर को कैसे हटाओगे तुम?"[13] परिवेश जन्य दलितों की शिक्षा-दीक्षा में रोडे अटकानेवाली स्थितियों से हमें अवगत कराया गया है।

दलित समाज के जीवन की व्यथा-कथा के बारें में चंदन कहता है कि - "खाली पेट नंगे तन और टुटे-फूटे छान झोपड़ों में बसर करने की विवशता यही रहा है सैकड़ों-हजारों वर्षो से हमारे समाज का यथार्थ।"[14]

अत: उपन्यास का 'चंदन' पात्र एक शिक्षित दलित युवक है जो समाज के सामाजिक परिवेश में बदलाव लाने के लिए संघर्षरत है। वह दलित समाज को शिक्षित कर उन्हें उनके समता, स्वतंत्रता, बंधुता तथा न्याय इन अधिकारों के प्रति सचेत करता है। अत: उसके सामाजिक परिवेश में बदलाव लाने के लिए किये जा रहे प्रयासों के बारे में कहा जाता है कि - "समाज से अन्याय और असमानता को मिटाकर सवर्ण-अवर्ण, सछूत-अछूत, अमीर-गरीब और मालिक-मजदूर सबको एक समान धरातल पर लाने तथा समाज में खुशहाली और भाईचारा बढ़ाने के लिए कार्य कर रहा है चंदन।"[15] चंदन का

यह प्रयत्न प्रस्तुत उपन्यास के परिवेश की उपज माना जा सकता है।

अर्थात उपन्यास का नायक दलित समाज की सामाजिक क्रांति का प्रतीक बना है। वह शिक्षा, संगठन तथा संघर्ष के बल पर दलित समाज के सामाजिक परिवेश में जो बदलाव लाता है इसका चित्रण उपन्यास के अंत में इस तरह दृष्टिगोचर है कि -

"चंदन! समानता और सामाजिक न्याय की जो ज्योति तुमने जलायी है और जहाँ-जहाँ तक भी उसका आलोक पहुँचा है सामाजिक जीवन में व्याप्त असमानता और अन्याय के अंधकार का नाश कर समानता और न्याय का प्रकाश फैलाया है।"[16] दलित समाज के सामाजिक उत्थान के लिए सामाजिक क्रांति का निर्माण परिवेश में जान ड़ालता है।

"तुम्हारे प्रयासों से बदलाव की पक्रिया शुरु हुई है और दिन-प्रतिदिन यह प्रक्रिया तेज होती जा रही है। लोगों में अपने उत्थान और विकास के प्रति चेतना आ चुकी है और समाज के दूसरे तबकों के लोग भी यह वात अच्छी तरह समझ चुके है कि दलितों को समानता और भाईचारे का दर्जा देने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। चारों ओर समता और स्वतंत्रता का माहौल है। गली-गली में प्रेम और वंधुत्व की धारा बह चली है।"[17] अत: दलित समाज ,रुढ़ि-परंपरा, मिथ्य-विश्वास और आडंवरों के प्रति विद्रोह करता दृष्टिगोचर है। दलित समाज की बदलाव की यह प्रक्रिया और सवर्ण समाज की मानसिकता में आनेवाला परिवर्तन परिवेश की दृष्टि से युग सापेक्ष है।

अत: उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जयप्रकाश कर्दम जी ने 'छप्पर' उपन्यास का आरंभ दलित समाज के सामाजिक परिवेश के साथ शुरु होता है इसके अंतर्गत उनके दारिद्रय, पीड़ा, अभावग्रस्तता अशिक्षा, अज्ञान, उनकी समस्याओं तथा शोषण की गतिविधियाँ आदि का चित्रण परिवेश के अंतर्गत किया है तथा उपन्यास के आरंभ से लेकर अंत तक दलित समाज जीवन के सामाजिक परिवेश में समय के साथ आये वदलावों को सम्यक रूप में रेखांकित किया हुआ है। सवर्ण समाज की मानसिकता, सवर्ण युवती की दलित समाज के विकास में जुड़े रहने की गतिविधियाँ, जमींदार ठाकुरों

द्वारा खेतिहर दलित मजदूरों का होनेवाला शोषण यहाँ परिवेशजन्य वातावरण के साथ रुपायित किया गया है।

जयप्रकाश कर्दम जी ने विवेच्य उपन्यासों में रुपायित सामाजिक परिवेश में दलित समाज के प्रत्येक पहलु का सूक्ष्म से लेकर बड़े से बड़े पक्ष पर गहन विचार, चिंतन करते हुए उनके सामाजिक जीवन के सत्यों, तथ्यों तथा यथार्थता का अन्वेषण करके वातावरण को सजीव बनाने का प्रयत्न किया है। सवर्ण समाज और दलित समाज के विषम पहलुओं को परिवेश के रूप में यथार्थ वाणी दी है। अंत में वदलाव जन्य वातावरण की सृष्टि करके युगबोध की आवश्यकता पर वल दिया है।

5.2.2 आर्थिक परिवेश :

जयप्रकाश कर्दम जी के विवेच्य उपन्यासों में निहित आर्थिक परिवेश का समग्रता से विवेचन तथा विश्लेषण यहाँ पर इसप्रकार प्रस्तुत है -

'करुणा' लघु-उपन्यास का आर्थिक परिवेश निम्नांकित है -

"हरिशंकर के रिटायर होते ही घर की स्थिति डगमगाने लगी। फण्ड आदि का जो थोड़ा-बहुत पैसा मिला था वह कुछ ही दिनों में खर्च हो गया। अव हरिशंकर का हाथ खाली हो चुका था। गृहस्थी का पूरा खर्च और उस पर कमर तोड़ महंगाई। थोडी-सी पेंशन से पूरा नहीं पड़ा रहा था। घर का खर्च चलाने के लिए उन्होंने कई जगह काम की तलाश की पर कहीं काम नहीं लग सका। अव घर का खर्च चलाने के लिए इस बात के सिवाय कोई उपाय नहीं रह गया था कि रमेश अपनी पढ़ाई छोड़कर रोजगार की तलाश में निकलता।"[18] एक रिटायर्ड व्यक्ति की आर्थिकता से निर्मित उसके परिवार का वातावरण यहाँ चित्रित है।

अत: इस उपन्यास का एक दलित पात्र रमेश आर्थिक परिस्थिति से त्रस्त होने से अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर नौकरी की तलाश करता है जो एक जगह स्कूल में अध्यापक की नौकरी के लिए नसबंदी शोषण का शिकार वनता हैं। दलित शिक्षित

युवकों की मजबूरी का परिवेश लेखक ने यहाँ रेखांकित करके प्रशासन में स्थित विद्रुपताओं का चित्रण किया है।

इस उपन्यास में बेरोजगारी तथा समाज व्यवस्था में स्थित रूढ़ि परंपराएँ, आर्थिक शोषण करनेवाली दहेज प्रथा की भयंकरता दहेज के कारण दलित घर की लडकीयों का आर्थिक अभाव के कारण अजीवन अविवाहित रहने का निर्णय, तो कई युवतियों की आत्महत्याएँ आदि का परिवेशजन्य वातावरण कर्दम जी ने खड़ा किया है।
'छप्पर' उपन्यास में ग्रामीण परिवेश में स्थित दलित समाज के आर्थिक परिवेश का वर्णन करते हुए जयप्रकाश लिखते हैं -

"जो लोग दलित और दरिद्री हैं उनके पास रहने-सहने तथा एकाध पशु जो वह पालते हैं, उन सबके लिए कुल जमा गारा-मिट्‌ठी की दीवारों पर घास-फूस के छप्पर या झोपड़ियाँ हैं। इकछत्ती-दुछत्ती अधिक हुआ तो किसी के कच्चे कोठे पर वाँस की खपच्चीयाँ या खपरैल की छत होती है या पशुओं के लिए छान-झोपड़ी अलग। यही तक सीमित है उनकी साधन-संपन्नता।"[19] दलित समाज के साधन संपन्नता का वातावरण लेखक ने यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है।

'छप्पर' का पात्र सुक्खा चमार एक दलित किसान मजदूर है जो आर्थिक अभावों से त्रस्त है। उसके गाँव के ठाकुर जमींदारों ने थोड़ा-सा कर्जा देकर उसके खेत तथा घर पर कब्जा कर रखा है। उन्हें दिन रात मेहनत मजदूरी करने के पश्चात भी उसे एक जोड़ी जूती तक नसीब नहीं होती, उनके घर फाँके पड़ते हैं। आर्थिक विपन्नता के कारण कई दिनों तक चुल्हा तक नहीं जलता है। अर्थात उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ग्रामीण दलित समाज के आर्थिक परिवेश का करुणामयी चित्र प्रस्तुत उपन्यास में दृष्टिगोचर है। यहाँ दलितों का अभावग्रस्त, दयनीय परिवेश प्रस्तुत किया है।

जयप्रकाश कर्दम ने प्रस्तुत उपन्यास 'छप्पर' में ग्रामीण परिवेश में सवर्ण लोगों की आर्थिक स्थिति का अंकन किया हैं। गाँव के पंडित पुरोहित, जमींदार, साहुकार लोग आर्थिक दृष्टि से संपन्न हैं -

"संपन्न सवर्ण लोगों के घर काफी बड़े पक्के और प्लास्टर युक्त हैं। रहने-सहने के लिए दुमंजिले तिमंजिले और उठ-बैठक के लिए लम्बे-चौंडे अहाते में बैठक या चौपाल और ढोर-डांगरों के लिए जगह अलग। एक-दो कोठों में भूसा और अनाज भरा होता है और एक में खली-चुनी आदि। ट्रेक्टर ट्राली बुग्गी तथा इंजन सैट आदि खड़ा करने की व्यवस्था अलग होती है।"[20] सवर्णो की संपन्नता का यथार्थ परिवेश यहॉ देखने को मिलता है।

अत: इस उपन्यास के मातापुर गाँव का सवर्ण पात्र ठाकुर हरनामसिंह की साधन संपन्नता, उसकी आर्थिक स्थिति, ग्रामीण आँचल के जमींदारों की स्थिती पर प्रकाश डालती है। जैसे - "कई सौ एकड़ की जमींदारी थी उनकी। ट्रेक्टर, टयूवेल, गाय-बैल, नौकर-चाकर, हर चीज की रेल-पेल सी थी उनके यहाँ। खेतों में कब क्या बोया जा रहा है, किस खेत में कौन-सी फसल खड़ी है, किस खेत में कब पानी देना है, कब खाद लगाना है, कब निराई-गुड़ाई करनी है, कव काटना-पीटना और कव जुताई -पलेवा होनी है, ठाकुर साहब को कुछ खास पता नहीं रहता था इस सवका। थोड़ा बहुत हो तो ध्यान भी रखते ठाकुर साहव लेकिन इतनी वड़ी मिल्कियत का हिसाब-किताब कैसे रखे-कब में ध्यान दे इस ओर। एक जान और सौ आफत।"[21] यहाँ ग्रामांचलों के सवर्ण जमींदारों की स्थिति का वातावरण परिवेशानुकूल उभाग हुआ दिखाई देता हैं।

अत: जयप्रकाश कर्दम जी ने 'छप्पर' उपन्यास में आर्थिक परिवेश के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र में दलित समाज और सवर्ण समाज के आर्थिक स्थिति में जो अंतर है इसका भयावह यथार्थ परिवेश के रूप में खड़ा किया है। तथा इसके साथ ही शहर की झोपड़पट्टी में रहनेवाले दलित वर्ग के आर्थिक परिवेश के त्रासद जीवन को यथार्थ रूप में रेखांकित किया है। शहर के दलितों की अभाव ग्रस्तता को परिवेशजन्य रूप में खड़ा करते हुए कर्दमजी लिखते हैं - "शहर में भी बहुत से दलित और दारिद्र लोग बिना छुकी-भुनी सब्जी खाते हैं या केवल पानी या चाय के साथ नमक की रोटियाँ गले से नीचे

उतारकर जिन्दा रहते हैं। फाका भी रह जाता है बहुत से घरों में। यहाँ भी तन ढ़कने को कपड़ा नहीं हैं बहुत से लोगों के पास। यहाँ भी गाँवों की तरह बच्चे रेत-मिट्ठी में खेलते नंगे घूमते है। बहुत-सी औरतों के पास यहाँ भी मैंली-कुचैली-सी सिर्फ एक साड़ी होती है। सस्ती-सी कच्चे-पक्के रंगों की। दूसरी साड़ी के अभाव में बहुत सी औरते नहा धो नहीं पाती महीनों तक। इतना ही नहीं बहुत-सी गर्भवती औरतों को फुटपाथ पर ही खुले आकाश के नीचे बच्चे पैदा करने पडते हैं।"[22] यहाँ शहरों में रहनेवाले दलितों की दुर्गतिका यथार्थ वातावरण खड़ा कर दिया गया है। लेखकने संतनगर की एक झोपड़पट्टी का भी यथार्थ परिवेश का अंकन किया है। जैसे - "इस झोपड़पट्टो के सभी लोग गरीब और मजदूर हैं। इनमें से कुछ मिल-मजदूर अथवा बेलदारी का काम करते हैं। कुछ लोग फल-सब्जी या छोटी-मोठी घरेलु चीजों या खेल खिलौनों को चार पहियों की ठेली पर रखकर या सिर पर टोकरी रखे गली-गली फेरी लगाने का काम करते हैं। कुछ लोग जूते चप्पल आदि बनाने का काम करते हैं और कुछ लोग कागज के लिफाफें, कागज या मिट्ठी के खेल-खिलौने या चटाई आदि बनाकर बाजार में बेच आते हैं। घर की औरते और बच्चे भी हाथ बँटते है उनके इस काम में।"[23] संतनगर की झोपडपट्टी में स्थित लोगों के विविध व्यवसायों की परिवेश यहाँ उभारा है।

संक्षिप्त में 'छप्पर' उपन्यास में ग्रामांचलों में स्थित दलित वर्ग के और सवर्ण वर्ग के एवं शहरों में स्थित दलित वर्ग के आर्थिक परिवेश को प्रस्तुत करके वहाँ की आर्थिक विपन्नता का, वहाँ की विवशता का, वहाँ के दलित समाज की त्रस्तता का बड़ा ही मार्मिकता के साथ यथार्थ रूप में लेखक ने वहाँ के वातावरण को खींचा है।

'छप्पर' उपन्यास में आर्थिक परिवेश के अंतर्गत जयप्रकाश कर्दम जी ने बड़ी गहराई के साथ दलित समाज तथा उच्चवर्गीय समाज की आर्थिक स्थिति को यथार्थ रूप में रेखांकित किया हुआ है।

अत: उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जयप्रकाश कर्दम जी ने विवेच्य उपन्यासों में आर्थिक परिवेश का बड़ा ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी यथार्थ अंकन क्रिया

हुआ दृष्टिगोचर होता हैं।

5.2.3 राजनीतिक परिवेश :

राजनीतिक शब्द अंग्रेजी के 'पोलिटिक्स' का हिंदी अनुवाद है। राजनीतिक शब्द को विभाजित करने के पश्चात राजा-नीति इन अलग-अलग शब्दों का बोध द्रष्टव्य है। अर्थात इससे तात्पर्य है कि - राजा का अर्थ है शासक और नीति का अर्थ है ले जाना। अत: राजनीति का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ.श्यामलाल वर्मा लिखते है - "राजनीति शक्ति और संबंधी वह गतिविधि हैं जिसके द्वारा व्यक्ति या व्यक्ति समूह सहयोग एवं द्वंद्व के माध्यम से अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीतिक संरचनाओं प्रतिक्रियाओं एवं क्रियाविधियों की औचित्यपूर्ण सत्ता के उपयोग का प्रयास करते हैं।"[24]

अर्थात समाज ने राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण मानवहित के हेतु किया था किन्तु इसका स्वरूप स्वार्थी लोगों ने विकृत बनाया क्योंकि भारतीय राजनीतिक परिवेश विशिष्ट लोगों के हाथों की कठपुथली रही है। प्राचीन कालीन वर्ण व्यवस्था में उच्चवर्गीय लोग सत्ता पर विराजमान रहें तथा वर्तमान समय में सामंतवादी तथा पूँजीवादी लोग। इन्होंने सामान्य जन को जातिवाद के गिरफ्त में फँसाकर उनका शोषण किया जिससे समाज व्यवस्था में स्थित बृहद दलित वर्ग नरकीय जीवन जीता आ रहा हैं। भारतीय समाज व्यवस्था में शोषित पीड़ित दलित समाज के साथ अपनायी जानेवाली कूटनीति देश स्वतंत्रता के पश्चात भी मानसिक रूप में उसी स्थिति में रही हैं। देश स्वतंत्रता के पश्चात आम गरीब जनता ने जो आशाये, विश्वास तथा मनोकामनाएँ की थी, इसके बारे में डॉ.यादवराव धुमाळ जी का मंतव्य उल्लेखनीय हैं कि - "गरीब भारतीय जनता ने स्वतंत्रता के बाद जो आशाये रखी थी वे कुछ कालान्तर में टूटती हुओ नजर आई। दलितों की स्थिति में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ जिसे आजादी की देन कहा जाए।"[25]

अत: उक्त कथन के साथ ही हमारे भ्रष्ट और विषाक्त राजनीतिक परिवेश की तीखी और स्पष्ट अभिव्यक्ति डॉ.चंद्रशेखर ने इन शब्दों में की है कि -

"भ्रष्ट शासन, जनघाती तन्त्र, लुच्ची व्यवस्था, दोगली सिंहासन धर्मिता वेहया शक्ति का वंशानुगत ध्रुवीकरण यह हैं कुल राजनैतिक पर्यावरण।"[26] किन्तु समाज सुधारकों तथा शिक्षा के प्रचार-प्रसार से इस दूषित राजनीतिक परिवेश में समय के साथ बदलाव होता रहा। इसमें दलितों के मसीहा डॉ.बाबासाहब अम्बेड़कर जी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है, इनके बारे में ओमप्रकाश वाल्मीकी दलित राजनीतिक आंदोलन के पहलुओं को उजागर करते हुए लिखते है कि - "डॉ.अम्बेड़कर का आंदोलन जहाँ एक सामाजिक और वैचारिक आंदोलन था, वही वह राजनीतिक आंदोलन भी था।"[27]

भारतीय समाज व्यवस्था के दलित समाज के उत्थान हेतु समाज सुधारकों के साथ-साथ दलित साहित्यकारों ने भी अपनी रचनाओं के सृजन द्वारा भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के परिवेश को स्पष्ट करते हुए उसके खिलाफ विद्रोह कर दलितों में आ रही राजनीतिक जागृति और उनके वैचारिक आंदोलन के जरिए राजनीतिक सत्ता के प्राप्त करने के लिए किये जा रहें प्रयासों का यथार्थ रुप में अंकन किया है। इसमें हिंदी दलित साहित्यकार के रूप में जयप्रकाश कर्दम जी भी एक हैं, जो इनके विवेच्य उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश का बड़ी गहराई के साथ बखूबी से चित्रण प्रस्तुत हुआ है -

'करुणा' लघु-उपन्यास में जयप्रकाश कर्दम जी ने राजनीतिक परिवेश को सोद्देश्य उभारा है। जब देश में बेरोजगारी व्यापक रूप ले रहीं थी और आम जनता रोजगार की माँग कर रही थी इसके लिए आंदोलन हो रहें थे, उस समय संसद या विधान सभा का चुनाव हार जानेवाले नेता इन आंदोलनों के अगुवा बने हुए थे। अपने स्वार्थ हेतु शासन-तन्त्र में चारों ओर भ्रष्टाचार व्याप्त था। पूँजीपति लोग राजनेता बने थे जो गरीब जनता का शोषण कर रहें थे।

अत: भारतीय समाज व्यवस्था में राजनीति में भ्रष्टाचार और भाई -भतीजावाद और घूस का बोलबाला था।

इस लघु-उपन्यास में राजनीतिक दाँव पेच और राजनीति के साथ जोंक की तरह चिपके हुए राजनेताओं का चित्रण करते हुए लिखा है कि धामपुर गाँव का

ठाकुर सुखदेवसिंह एम.एल.ए. का चुनाव जीतने के लिए दलित समाज का चुनाव में समर्थन पाने के लिए कहता है कि - "खैर कहारों-चमारों की तो कोई वड़ी वात नहीं। सौ-दो-सौ की दारू पिला दूँगा तो सब सीधे हो जायेंगे। ऐसे नहीं तो धमका-सटका कर भी...।"[28] दलितों पर चुनाव के दिन में राजनीतिक नेताओं द्वारा आनेवाले दबाओं का यथार्थ परिवेश खड़ा कर दिया है।

उक्त विवेचन वर्तमान राजनीति की विकृत अवस्था तथा घटिया पन को स्पष्ट करता है। इसके संकेत यथार्थ रूप में 'करुणा' उपन्यास में दृष्टिगोचर होते हैं।

'छप्पर' उपन्यास में राजनीतिक परिवेश भी बींच-वींच में उभरकर आया है।

"शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ लोगों के दृष्टिकोण में भी व्यापकता आनी शुरू हुई। केवल रोटी की चिन्ता में उलझे रहनेवाले लोगों के चिन्तन में वदलाव आया तथा अपने उत्थान और विकास के प्रति चेतना जाग्रत होने लगी। अन्याय, शोषण और असमानता का अन्त कैसे हो? घृणा और जिल्लत की जिन्दगी से कैसे उवरा जाए तथा कैसे दलित लोग भी दूसरे लोगों की तरह सम्मान और स्वाभिमान से जी सकें? इन सभी बातों पर उनके बीच प्राय: चर्चा होती रहती। धीरे-धीरे चंदन का स्कूल दलित-शोपित लोगों की सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया और जल्दी ही इन गतिविधियों ने एक जन आंदोलन का रूप ले लिया। समता और स्वतंत्रता के वातावरण में साँस लेने के लिए आतुर अधिक से अधिक लोग इस आंदोलन के साथ जुड़ते गए। सामाजिक बदलाव के लिए शुरु हुआ यह आंदोलन बृहत से बृहतर होता गया और थोड़े ही दीनों में शहर की गलियों से बाहर निकलकर यह आंदोलन दूर देहातों तक फैल गया। यहाँ आंदोलन का संवंध राजनीति से अधिक जुड़ाव रखता है।

आंदोलन की व्यापकता को देखते हुए तथा इसकों सुव्यवस्थित और सुनियंन्त्रित ढंग से आगे बढ़ाने के लिए उसको कई शाखाओं में वाँटा गया। सामाजिक समता, आर्थिक आत्मनिर्भरता, महिला शिक्षा तथा सांस्कृतिक पुनरूत्थान आदि भी अव

आंदोलन के उद्देश्य में समाहित हो गए थे। हालांकि आंदोलन की विभिन्न शाखाओं का प्रभार अलग-अलग लोगों को सौंपा गया था किन्तु समग्र रूप से आंदोलन के कार्य -संचालन का दायित्व चंदन पर ही था। रात-दिन चंदन आंदोलन की कार्य योजना तैयार करने और उसे क्रियान्वित करने के उपाय खोजने में लगा रहता। इसके अलावा आंदोलन की अन्य गतिविधियों पर नजर रखना भी जरूरी था, क्योंकि आंदोलन में सभी आयु, वर्ग के तथा शिक्षित-अशिक्षित सभी तरह के लोग शामिल थे। जहाँ वृद्ध लोग शान्ति और संयम से काम लेने के पक्षधर थे, वहीं युवा खून उग्र और उतावला तथा हिंसा पर उतरने तक को तत्पर था। आंदोलन के निमित्त सभी की शक्ति और ऊर्जा का सदुपयोग हो इसके लिए सबके बीच तालमेल और एकरूपता का होना जरूरी था। आंदोलन की सफलता के लिए जरूरी था कि सब लोग एक ही लाइन पर सोचे और उसी के अनुरूप कार्य करें। इसलिए चंदन को अपना बहुत सारा समय लोगों को यह समझाने में लगाना पड़ता कि वे कैसे एक-दूसरे के साथ तालमेल बनाये और मिल-जुलकर आंदोलन को आगे बढ़ाएँ।"[29]

अत: उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'छप्पर' उपन्यास का नायक दलित समाज में राजनैतिक, वैचारिक जागृति कर शिक्षा, संगठन के बल पर राजनीतिक सत्ता में अपने समाज का अस्तित्व बनाने के लिए प्रयासरत है जो उसके लिए वह राजनीतिक परिवेश का निर्माण करने में अथक परिश्रमों के साथ कार्यरत दृष्टिगोचर है।

निष्कर्षत: कहना सही होगा कि जयप्रकाश कर्दम जी ने भारतीय समाज व्यवस्था में स्थित राजनीतिक परिवेश का सूक्ष्म अवलोकन कर उसके यथार्थ रूप का अंकन अपने विवेच्य उपन्यासों में करके यथार्थ वातावरण को रेखांकित किया है।

5.2.4 धार्मिक परिवेश :

धर्म से तात्पर्य है - प्रेम, मानवीयता, आस्था दायित्वबोध, संयम, नैतिकता, अनुशासन मूल्य, विवेक आदि तत्वों से समन्वित जीवन जीने की कला है। इसमें मानवहित समाज हित है। किन्तु धर्म के इन मानवतावादी मूल्यों का प्रस्थापित समाज

व्यवस्था के उच्चवर्गीय लोगों ने तथा पंडितों-पुरोहितों ने अपने स्वार्थ के लिए विकृत तथा समाजविघातक रूप बनाया है। वर्ण, धर्म, जाति, ईश्वर इनका दलित समाज के शोषण के हथियार तथा साधन के रूप में उपयोग किया हैं।

भारतीय समाज व्यवस्था मूलत: हिंदू-वर्णव्यवस्था के ढाँचे में पली है। जिसमें दलित वर्ग सदियों सहस्त्राब्दियों से भौतिक गुलामी के साथ-साथ धार्मिक और सांस्कृतिक गुलामी से प्रताड़ित है। इस अन्याय, अत्याचार, शोषण तथा विषमता के खिलाफ समाज सुधारकों ने आवाज उठायी हैं। उन्होंने भारतीय समाज व्यवस्था में स्थित धर्मव्यवस्था, वर्णव्यवस्था, जातिभेद, ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण तथा सामंती सोच के प्रति विद्रोह विरोध एवं तिरस्कार के भावों को व्यक्त किया तथा इस व्यवस्था में निहित मूल्यों तथ्यों को दलित जनों के सम्मुख प्रस्तुत कर धर्म और संस्कृति के नाम पर हो रहे शोषण की समाज में जागृति की है। अत: इस महत् कार्य में डॉ.बाबासाहब अम्बेड़कर ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

डॉ.बाबासाहब अम्बेड़कर ने धर्म तथा संस्कृति के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए दलित साहित्यकारों को अपने कर्तव्य तथा दायित्वों के प्रति सचेत करते हुए कहा है - [4] "हमारे जीवन, कर्तव्य और संस्कृति की ओर हमारा ध्यान नहीं है। अर्न्तमुख होकर विचार करने से हमारे सामने वह भयावह स्थिति स्पष्ट हो जाएगी कि हमारे जीवन मूल्य और सांस्कृतिक मूल्यों को बचाने के लिए दलित साहित्यकारों को जागरूक और प्रयत्नशील हो जाना चाहिए। तुम्हारे उपन्यास कथाओं की सीता लक्ष्मण रेखा पार करके आगे जा चुकी है। दुर्योधन के दरबार में द्रौपदी का वस्त्रहरण हो रहा है। शकुन्तला दुष्यन्त अपना सही परिचय नहीं दे रहा है, इसलिए शकुन्तला को वनवास हो रहा है। ऐसी स्थिति में साहित्यकारों को मैं आव्हान करता हूँ कि वे विभिन्न साहित्यिक विधाओं के द्वारा उदात्त जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों को रेखांकित करें। अपने लक्ष्य को मर्यादा में मता बांधो उसे और अधिक विशाल बनने दो। वाणी का विस्तार करो, अपनी लेखनी को केवल अपने प्रश्नों तक सीमित मत रखो। [4] उसे

तेजस्वी बनाओं जिससे गाँव में फैला अन्धकार दूर हो सके। यह मत भूलों कि इस भारत में उपेक्षित दलितों का बहुत बड़ा विश्व है। अपनी रचनाओं के द्वारा उनकी वेदना को समझकर उनके जीवन को उज्ज्वल बनाने की कोशिश करो। यही मानवता की सच्चाई है।"[30]

अत: डॉ.बाबासाहब अम्बेड़कर की विचारधारा दलित साहित्य के सृजन की प्रेरणास्त्रोत है। तथा दलित रचनाकार अम्बेड़कर जी के उक्त कथन में निहित विचारों को आत्मसात कर अपनी लेखनी के प्रति ईमानदार तथा प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं। जयप्रकाश जी इसके अपवाद नहीं है।

हिंदी दलित साहित्य के रचनाकार जयप्रकाश कर्दम जी अम्बेड़करवादी विचारों के अनुयायी है। उन्होंने विवेच्य उपन्यासों का सृजन दलित समाज जीवन के वातावरण की यथार्थता को प्रस्तुत करने के परिप्रेक्ष्य में किया है। अत: उन्होंने विवेच्य उपन्यासों के धार्मिक परिवेश में दलित समाज के प्राचीन तथा वर्तमान समय के धार्मिक विचारधारा को प्रस्तुत किया हैं इसका विवरण-विश्लेषण यहाँ पर निम्नांकित है -

'करुणा' इस लघु-उपन्यास का सृजन जयप्रकाश कर्दम जी ने भगवान गौतम बुद्ध के बौद्ध धम्म के तत्वज्ञान को आधार बनाकर किया है। बौद्ध धम्म किसी धार्मिक संप्रदाय का नाम नहीं है वह एक जीवन जीने का सुश्रेष्ठ मार्ग है। जिसे अपनाकर सृष्टि का कोई भी मनुष्य जीवन की उच्च ध्येय पूर्ति में सफलता हासिल कर सकता है। अत: जयप्रकाश कर्दम कहते है -"बौद्ध धर्म उस जीवन पद्धति का नाम है, जो मनुष्यता पर आधारित है, जिसका केन्द्र बिंदु मानव है तथा मानव कल्याण ही जिसका एक मात्र ध्येय हैं।"[31]

जयप्रकाश कर्दम बौद्ध धर्म की महत्ता के बारे में लिखते है कि - "दुनियाँ के समस्त धर्मों में बौद्ध धर्म ही ऐसा धर्म है जो बुद्धि और विवेक पर आधारित है, जो विश्वास पर आधारित नहीं हैं। जो कहता है कि आओं और देखों। तथा जो सभी तरह की असमानताओं से रहित समानता पर आधारित धर्म है। वर्तमान समय में जबकि

जातिवादी, वर्गवादी एवं संप्रदायवादी विचार प्रोत्साहित हो रहें हैं, भगवान गौतम बुद्ध की शिक्षाएँ दिग्भ्रमित समाज को सही रास्ता दिखा सकती है। क्योंकि समता, स्वतंत्रता एवं बंधुता ही बुद्ध की शिक्षाओं का आग्रह है। इस दृष्टिकोण से ऐसे साहित्य की अत्यंत आवश्यकता है, जो बुद्ध जैसे महापुरूषों की शिक्षाओं को सही ढंग से प्रचारित-प्रसारित करें। 'करुणा' के सृजन के पीछे यही प्रेरणा रही है।"[32]

'करुणा' उपन्यास में बौद्ध धर्म के धार्मिक परिवेश का चित्रण यहाँ पर इस प्रकार प्रस्तुत हैं -

'विहार' में आज लोगों की अच्छी-खासी भीड़ थी। सभी धर्मो और सम्प्रदायों के लोग वहाँ आ-जा रहें थे। भिक्षु पूजा-उपासना के कार्य में व्यस्त थे। बुद्ध की अमृतवाणी लोगों के हृदय में मैत्री और बंधुता का संचार कर रही थी तथा दया और करुणा के समुद्र उस भगवान के समक्ष नत मस्तष्क हो कलान्त शान्ति का अनुभव कर रहें थे। जगह-जगह पर नीति विषयक चर्चायें हो रही थी। भन्ते धर्म का उपदेश कर रहें थे।"[33] बौद्ध विहारों में चलनेवाले धार्मिक अनुष्ठानों का वातावरण यहाँ देखने को मिलता है।

बौद्ध धम्म में प्राचीन मान्यताएँ, रूढ़ि-परंपरा, ईश्वर, आत्मा-परमात्मा, मोक्ष, स्वर्ग-नर्क, आडंबर, यज्ञ, अनुष्ठान, जातिवाद, छुआछूत आदि विषाक्त पाखंड बातों को स्थान नहीं हैं।

'करुणा' उपन्यास में बौद्ध धम्म के प्रचार-प्रसार के कार्य को धार्मिक परिवेश के अंतर्गत प्रस्तुत करते हुए लेखक लिखते हैं - "देश के विभिन्न भागों में अनेक बुद्ध-विहारों के निर्माण के साथ-साथ शिक्षा एवं स्वास्थ केंद्र स्थापित हो रहें हैं। इन शिक्षा केन्द्रों में सामान्य विषयों के साथ-साथ विद्यार्थियों को धर्म और नीति की शिक्षा दी जाती तथा स्वास्थ केन्द्रों में बीमारों को नि:शुल्क चिकित्सा सेवा प्रदान की जाती है। इन विहारों को संचलित करने की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कर्दम जी लिखते हैं - "इन केन्द्रों का संचालन यद्यपि मुख्यता प्रधान भन्ते के हाथ में था किन्तु इनको

सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए योग्य भिक्षु-भिक्षुणियों को केन्द्र संचालन का कार्य सौंपा गया।"[34] अत: बौद्ध धम्म के भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ समाज में स्वयं घुमकर जिस घर भी भिक्षा के लिए जाते वहाँ स्त्रियों को पंचशील और आर्य अष्टांगमार्ग का उपदेश अवश्य देती। धार्मिक प्रचार-प्रसार का वातावरण का अंकन किया है।

"बुद्ध विहार के आस-पास और भी कई मंदिर थे हिन्दुओं के जैनियों के। वहाँ पर भी नित्य ही प्रवचन होता था। किन्तु जैसी शांति और जैसी ठसाठस भीड़ इस बुद्ध विहार में होती थी वैसी अन्यत्र देखने को नहीं मिलती थी। ऐसा शायद इसीलिए था कि बौद्धमत पूजा और प्रसाद को ही धर्म नहीं मानता अपितु शील तथा कुशल कर्मो को धर्म मानता है। ये ही वे तत्त्व है जिनके पालन से सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक व्यवहार सुचारू रूप से चलते रह सकते हैं। कुशल कर्म ही मनुष्य को अन्य प्राणियों तथा अन्य मनुष्यों की सापेक्षता में भी उन्नत या महान बनाते हैं।"[35] इस धार्मिक परिवेश के सिलसिले में लेखक ने बुद्ध विचारों के साथ हिन्दुओं और जैनों के मंदिरों का भी परिवेश रुपायित दिया हैं।

'करुणा' उपन्यास के बौद्ध धर्म के तत्वज्ञान में निहित मूल्यों से आदर्श समाज का निर्माण करने के लिए उपन्यास के पात्र करुणा तथा रमेश कार्यरत है। वे कहते हैं - "ऐसा समाज जो न्याय, समता और भातृत्व की भावनाओं पर आधारित हों। जहाँ शोषण न हो, जोर-जबरदस्ती न हो, अन्याय न हो, जिस समाज के मनुष्यों का नैतिक चारित्र ऊँचा हो। जहाँ स्वार्थपरता न हो, धोखेबाजी न हो, भ्रष्टाचार न हो, जहाँ नेताओं और सरकार का एक मात्र उद्देश्य 'बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय हो'।"[36]

अर्थात उक्त कथन में निहित आदर्श समाज निर्माण के लिए जयप्रकाश कर्दम भारतीय समाज व्यवस्था में धार्मिक परिवेश के अंतर्गत बौद्ध धर्म के धार्मिक परिवेश को महत्त्वपूर्ण मानते हुए उसकी महत्ता को इस उपन्यास में उजागर किया है।

'छप्पर' उपन्यास में मातापुर गाँव के एक गरीव दलित मजदूर किसान सुक्खा चमार अपने बेटे को उच्चशिक्षित बनाना चाहता है किन्तु प्रस्थापित समाज में

स्थित धर्म के ठेकेदार ब्राह्मण काणापंडित तथा सवर्ण ठाकुर इसका विरोध करते हैं क्योंकि इन्हें डर था कि कहीं यह दलित समाज पढ़-लिख कर हमारी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह न करें। इसलिए काणापंडित ठाकुर साहब से कहता है कि - "कई पीढ़ियों मे हमारे-आपके पुरके इस गाँव में रहते आए हैं। कभी किसी ब्राह्मण, ठाकुर या सेठ-साहुकार का बेटा इतना ऊँचा नहीं पढ़ा लेकिन यह दो कौड़ी का आदमी चमार की औलाद हम सबके मुँह पर एक कालिख पोतने चला है - यह अपमान है ठाकुर साहब हम सबके मुँह पर एक चाँटा है।"[37] तथा सुक्खा चमार से काणापंडित कहता है कि - "तू कितना ही बड़ा हो जा सुक्खा लेकिन धर्मशास्त्रों से बड़ा नहीं हो सकता तू। अपमान करता है धर्मशास्त्रों का वेद-वेदांगों का।"[38] अर्थात उक्त कथन से स्पष्ट है कि प्राचीन काल से भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म, जाति, ईश्वर, धर्मग्रंथ, शास्त्र के नाम पर इन अज्ञान दलित जनों को धमका-डराकर ब्राह्मण वर्ग कैसे शोषण करता है। उन्हें दारिद्रय तमस की खाई में ढकेल देता है। तथा उच्चवर्गीय शोषक वृत्ति एवं स्वार्थी प्रवृत्ति का ब्राह्मण पंडित काणापंडित दलित जातियों के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए कहता है कि - "कैसे बराबर हो सकते हैं ब्राह्मण और भंगी सब? यह कोई उनकी बनाई व्यवस्था है कि लिया और खत्म कर दिया। सनातन व्यवस्था है, यह तो रहेगी ही। धर्मशास्त्रों से बड़ा कोई हो सकता है भला।"[39]

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उच्चवर्गीय सवर्ण मानसिकता के लोग दलित समाज को अपना गुलाम समझकर धर्म तथा ईश्वर के नाम पर उनका शोषण करना अपना अधिकार समझते हैं। उन्होंने दलित समाज को धर्म और ईश्वर इन दिव्य शक्तियों से भयभीत रखकर उनके विकास तथा उत्थान के साधन शिक्षा से इन्हें दूर रखा था। किन्तु समय के साथ-साथ इसमें क्रांतिकारी बदलाव आया, पुरानी धार्मिक मान्यताओं का विरोध होने लगा। इसका चित्रण भी 'छप्पर' उपन्यास में द्रष्टव्य हैं -

दलित समाज शिक्षित बनने से उनका हिन्दू धर्म के कर्मकांडो-आडंबरो तथा पंडित-पुरोहितों, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा पर की आस्था तथा विश्वास कम होने

लगा है। समाज में जातिवाद, विषमता को नष्ट करने के प्रयास हो रहें है। धर्मग्रंथ तथा धर्मशास्त्रों का विरोध होने लगा है। दलित समाज में जागृति हुई है चंदन कहता हैं- "हमारी समाज व्यवस्था धर्म द्वारा प्रेरित और संचालित है हमारी सामाजिक स्थिति धार्मिक आदेशों का ही परिणाम है। धर्मग्रंथ ही हमारे शोषण और अत्याचार की जड़े हैं। इन जड़ों को उखाड़ फेंकने की जरूरत है।"[40] यहाँ धार्मिक परिवेश की सच्चाई का पता चलता है।

"देवी-देवताओं की पूजा अर्चना तथा उनके लिए यज्ञ और हवन आदि अनुष्ठानों की परंपरा के पीछे एक ही उद्देश्य रहा है, और वह है समाज को दिव्य-शक्तियों से भयभीत रखकर धर्म विशेष को जीवित रखना।"[41] यहाँ धार्मिक कर्म कांडो की स्थितियों के दर्शन होते हैं।

'छप्पर' उपन्यास का नायक चंदन दुनियाँ में आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म भगवान या इस तरह की किसी सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं मानता, उसकी सोच है कि सृष्टि में मनुष्य सबसे बड़ी सत्ता है, मनुष्य से बड़ी कोई चीज नहीं हैं। वह पुरातन शोषक धार्मिक परिवेश में बदलाव लाने के लिए संघर्षशील है। तथा उसके इस कार्य के लिए वह अथक परिश्रम करता है। उसके इन किये गये प्रयासों के फल स्वरूप समाज व्यवस्था में आये धार्मिक परिवेश में बदलाव का चित्रण इस प्रकार द्रष्टव्य हैं कि - "जहाँ पर छुआछूत को धार्मिक आदेश की तरह माना जाता था कभी, आज वहाँ सभी जातियों के लोग बिना किसी भेदभाव के एक दूसरे के साथ खा पी रहें हैं। जिस मातापुर में अवर्ण जाति का दुल्हा घोड़ी पर अथवा बैंड़-वाजे के साथ नहीं निकला कभी, आज चमार से भंगी तक सब जातियों की बारातें धूम धड़ाके के साथ निकल रही हैं।"[42] यहाँ परिवर्तित परिवेश को वाणी मिली है।

जयप्रकाश कर्दम जी ने 'छप्पर' उपन्यास में दलित समाज के प्राचीन काल में धार्मिक परिवेश में व्याप्त अंधश्रद्धा, ईश्वर आत्मा, परमात्मा तथा ऊँच-नींच और छुआछूत में पीसते जीवन की यथार्थता को स्पष्ट करते हुए उसके साथ ही वर्तमान समय

में दलित शिक्षित बनकर अपने समाज जीवन के धार्मिक परिवेश में किस तरह परिवर्तन कर रहा है, तथा सृष्टि में मानवता को ही सर्वोपरी धर्म मानकर उसकी सत्ता को मानता है इसे रेखांकित किया है।

निष्कर्ष :

जयप्रकाश कर्दम जी के विवेच्य उपन्यास दलित साहित्य की अनिवार्य कृतियों के रूप में विशिष्ट रचना तंत्र और नितान्त मौलिकता के गुणों से संपन्न हैं। इन विवेच्य उपन्यासों के परिवेश के अंतर्गत सामाजिक परिवेश में दलित समाज की वेदना-दर्द का, उनकी त्रासदी का, उनकी समस्याओं का, अभावग्रस्तता का, उनके शोषण का, समाज व्यवस्था में स्थित जातिवाद, छुआछूत को उजागर किया है और इस विषाक्त और बदबू भरे परिवेश में बदलाव के लिए उचित परिवेश का निर्माण करने का लेखक ने प्रयास किया है। आर्थिक परिवार के अंतर्गत दलित समाज जीवन में स्थित आर्थिक विपन्नता उनका दारिद्रय तथा उनकी विवशताओं का यथार्थ चित्रण परिवेश के रूप में लेखक ने उजागर किया है। विवेच्य उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश के अंतर्गत समाज में स्थित भ्रष्ट राजनीति तथा नेताओं के कुकर्मो की पोले खोलते हुए भ्रष्ट राजनीति को ध्वस्त कर मानवता, समता, स्वतंत्रता, बंधुता तथा न्याय इन मूल्यों से समन्वित राजनीति को स्थापित करने के प्रयासों के अनुकूल परिवेश का निर्माण करने का प्रयास किया हैं। धार्मिक परिवेश के अंतर्गत दलित समाज की सदियों से धर्म ईश्वर के नाम पर पंड़ित, पुरोहितों के हाथों से किस तरह उपेक्षा होती आ रही हैं इसका चित्रण किया है और शिक्षा तथा समाज सुधारकों द्वारा समय के साथ इस परिवेश में आए परिवर्तन को भी उजागर किया है। विषमता से व्याप्त इस धार्मिक परिवेश को बदलकर एक समतावादी तथा मानवतावादी धर्म के रूप में बौद्ध धम्म की महत्ता को उजागर करते हुए भगवान गौतम बुद्ध के तत्वज्ञान को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

विवेच्य दोनों उपन्यासों में समाज व्यवस्था की विसंगतियाँ, विद्रुपताएँ, विषम स्थितियाँ, समाज, राजनीति, धर्म आदि के नाम पर दलितों का होनेवाला शोषण,

दलित औरतों की अस्मत को लूटने की सवर्णो की नीति, दलितों के जीवन के अभाव, सवर्णो द्वारा उनका हर तरह से होनेवाला शोषण, उनकी दरिद्रता, शिक्षा के पति उनके मन में बिथरनेवाले विचार, दलित मजदूरों का उपेक्षाजन्य जीवन, दलितों के आवासों की दुस्थिति, जमींदारों का दलितों की ओर देखने का दृष्टिकोण, दलित-सवर्ण समाज की मानसिकता, राजनीतिक गतिविधियों में दलितों की स्थिति, सनातन धर्मो के द्वारा हुई दलितों की उपेक्षा, समन्वयवादी धर्म की ओर दलितों का खिंचाव, धर्म परिवर्तन की मानसिकता, समता, बंधुता, स्वतंत्रता का महौल निर्माण करनेवाली समाज व्यवस्था आदि के रूप में परिवेशजन्य वातावरण को रूपायित करने में उपन्यासकार कर्दम जी सफल हुए हैं।

दोनों आलोच्य उपन्यासों का परिवेश यथार्थ और युगबोध से प्रभावित हैं।

संदर्भ संकेत :

1.	रामचंद्र वर्मा	-	बृहत हिंदी शब्द कोश	पृ.170
2.	सत्यपाल चुघ	-	'प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधी'	पृ.103
3.	डॉ.प्रदीप कुमार शर्मा	-	'हिंदी उपन्यासों का शिल्प-विधान	पृ 69
4.	डॉ.त्रिभुवन सिंह	-	'हिंदी उपन्यास शिल्प और प्रयोग	पृ.28
5.	डॉ.चंद्रकांत बांदिवडेकर	-	'उपन्यास स्थिति और गति	पृ.21
6.	डॉ क्षितिज धुमाळ	-	'बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक अनुशीलन'	पृ.315
7.	श्री नवलजी	-	'नालन्दा शब्द सागर'	पृ.1435
8.	डॉ.पुरूषोत्तम दुबे	-	'व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास'	पृ.38
9.	डॉ.जयप्रकाश कर्दम	-	'करुणा'	पृ.51
10.	वही	-		पृ.46
11.	डॉ.जयप्रकाश कर्दम	-	'छप्पर'	पृ.12
12.	वही	-		पृ.13
13.	वही	-		पृ.37
14.	वही	-		पृ.38
15.	वही	-		पृ.97
16.	वही	-		पृ.118
17.	वही	-		पृ.118
18.	डॉ.जयप्रकाश कर्दम	-	'करुणा'	पृ.12, 13
19.	डॉ.जयप्रकाश कर्दम		'छप्पर'	पृ.5

20.	वही	-		पृ.5
21.	वही	-		पृ.62
22.	वही	-		पृ.10, 11
23.	वही	-		पृ.11
24.	डॉ.श्यामलाल वर्मा	-	'आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त'	पृ.72
25.	डॉ.यादवराव धुमाळ	-	'साठोत्तरी हिंदी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अनुशीलन' अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर प.स.1997	पृ.226
26.	डॉ. चंद्रशेखर	-	'हिंदी नाटक और लक्ष्मीनारायण लाल की रंगयात्रा'	पृ.14
27.	ओमप्रकाश वाल्मीकी	-	'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र'	पृ.65
28.	डॉ.जयप्रकाश कर्दम	-	'करुणा'	पृ.29
29.	डॉ.जयप्रकाश कर्दम	-	'छप्पर'	पृ.76,77
30.	डॉ.भीमराव अम्बेड़कर	-	'दलित साहित्य सम्मेलन पत्रिका' **17** जनवरी **1976**	
31.	डॉ.जयप्रकाश कर्दम	-	'करुणा'	पृ.3
32.	वही	-		पृ.3
33.	वही	-		पृ.10
34.	वही	-		पृ.40
35.	वही	-		पृ.58
36.	वही	-		पृ.69
37.	डॉ.जयप्रकाश कर्दम	-	'छप्पर'	पृ.33
38.	वही	-		पृ.32

39. वही - पृ.82

40. वही - पृ.40

41. वही - पृ.18

41. वही - पृ.102,103